**The Academia**
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
**Volume: 02, Issue: II, Pages: 21-24, Year: 2024**

**ISSN- 2583-8830**

# ब्रजभाषा और जीवनीपरक साहित्य का विकास

**राजीव यादव**[1]

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, कालीचरण पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

**शोध सारांश**

वर्तमान के रूप का निर्धारण करने में अतीत निर्णायक भूमिका निभाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम ब्रजभाषा जीवनीपरक साहित्य के उद्भव और विकास की बात करेंगे। कहने की जरूरत नहीं है कि जीवन के प्रति किसी देश का दृष्टिकोण उसके जीवनी–साहित्य को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। वह न केवल उसकी प्रकृति–प्रवृत्ति का निर्धारण करता है वरन उसका नियमन भी । यही नहीं जीवनी साहित्य के विकास और अवरोध में भी उसकी भूमिका विवादातीत और सर्व प्रमुख रहती है। वैसे तो जीवनी विधा के बीज अपभ्रंश के कवियों द्वारा की गई आश्रयदाताओं की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशस्तियों में देखे जा सकते हैं किंतु वे जीवनी की शर्तों को पूरा नहीं करती, उनमें राजाओं के प्रायः अतिश्योक्तिपूर्ण शौर्य का काल्पनिक और विलासी प्रवृत्ति का ही अंकन अधिक है। इन वीर काव्यों में ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करने वाली वृतियाँ विरल है। आश्रयदाताओं के गुणों का उत्कर्ष दिखाने के लिए, वास्तविकता की अवहेलना प्रायः की गई है, वंश का गौरव दिखाने के लिए मूल पुरुषों की अप्रमाणिक तालिका गिनाई गई है। झूठे युद्धों की कल्पना की गई है। ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा भी गया है। अतिरंजना की विपुलता है, कहीं–कहीं अतिमानुष अप्राकृतिक वर्णन भी है। कई स्थलों पर दैवी तत्वों का प्रवेश और हस्तक्षेप भी दिखाया गया है।

**बीज शब्द:** ब्रजभाषा, रासो काव्य, अपभ्रंश, डिंगल, पिंगल, दोहा, काव्य भाषा, सबद, रमैनी, वीर काव्य, जीवनी, गीतिकाव्य, रीतिकाल, भ्रमरगीत।

## 1. प्रस्तावना

आधुनिक काल से पहले का हिन्दी साहित्य मुख्यतः ब्रजभाषा साहित्य का इतिहास है, लेकिन 'भाषा का विकास कोई आकस्मिक घटना नहीं है वह दीर्घकाल के ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। अपभ्रंश तथा परवर्ती देश–भाषाओं का ऐतिहासिक सम्बंध है तथा उसमे अनेक भावी विकास के बीज सन्निहित हैं।'[1] ब्रजभाषा का भी उत्तरकालीन अपभ्रंश से सीधा संबंध है। 'भाषा के संदर्भ में ब्रज शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम गोपाल कवि कृत 'रस विलास' (1557 ई.) में मिलता है।'[2] इसके अतिरिक्त पिंगल, मध्यदेशीय, अंतर्वेदी आदि नाम भी ब्रजभाषा के लिए प्रयुक्त हुए हैं। ये नाम देश–भेद के आधार पर है ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से ब्रजभाषा का संबंध विद्वानों द्वारा शौरसेनी अपभ्रंश से माना है। जो समस्त उत्तर भारत में प्रयुक्त होती थी। आदिकाल में ब्रजभाषा पिंगल नाम से रासों ग्रंथों में प्रयुक्त होती थी। पिंगल राजस्थान में प्रयुक्त ब्रजभाषा का स्वरुप है। पिंगल काव्य परम्परा के अंतर्गत 'प्राकृत पैंगलम में उद्धृत रचनाओं तथा पृथ्वीराजरासो, बीसल देव रासो, संदेशरासो, मधुमालती कथा इत्यादि अनेक रचनाओं के नाम लिये जा सकते हैं जिनमें ब्रजभाषा के विकास के बीज सन्निहित हैं।

ब्रजभाषा काव्य परम्परा में सूरदास को प्रथम महत्वपूर्ण कवि माना जाता है जिन्होंने ब्रजभाषा को एक नई दिशा दी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' के भाषा के संबंध में लिखते हैं कि "इन पदों के संबंध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांग पूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की उक्तियों सूर की जूठी सी जान पड़ती है अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीत काव्य परम्परा का चाहे वह मौखिक ही रही हो पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।"[3]

वहीं' डॉ. धीरेन्द्रवर्मा पृथ्वीराज रासो की भाषा को मध्यकालीन ब्रजभाषा मानते हैं लेकिन रचना के संदेहास्पद और विवादग्रस्त होने के कारण इसे ब्रजभाषा के अध्ययन में सम्मिलित नहीं करते हैं, उन्होंने ब्रजभाषा का वास्तविक आरम्भ सूरदास के साथ ही किया है। उन्होने लिखा कि "ब्रजभाषा और उसके वास्तविक साहित्य का वास्तविक आरम्भ उस तिथि से होता है जब गोवर्धन में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण पूर्ण हुआ और महाप्रभु बल्लभाचार्य ने भगवान के स्वरूप के सम्मुख नियमित रूप से कीर्तन की व्यवस्था करने का संकल्प किया। सूरदास ब्रजभाषा के सर्वप्रथम तथा सर्वप्रधान कवि हैं।''[4]

**The Academia**
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
**Volume: 02, Issue: II, Pages: 21-24, Year: 2024**
**ISSN- 2583-8830**

इस संदर्भ में डॉ. ग्रियर्सन का मत भिन्न है वे सूरदास को ब्रजभाषा का प्रथम कवि नहीं स्वीकार करते हैं। उनके मत से "1250 के चंदबरदाई ब्रजभाषा के प्रथम कवि हैं, 16वी शताब्दी में सूरदास इस भाषा के दूसरे कवि दिखाई पड़ते हैं। बीच के 300 वर्षों का साहित्य विल्कुल अंधकार में पड़ा हुआ है।"[5]

सूरदास के पूर्व की किसी गीतिकाव्य परम्परा का निश्चित पता भले नहीं चलता है लेकिन ब्रजभाषा में काव्य रचना के अनेक प्रयास उपलब्ध हैं। जिनमें अमीर खुसरो का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके संबंध में धीरेन्द्र वर्मा की टिप्पणी विचारणीय है "इस काल के अकेले प्रसिद्ध हिन्दी कवि अमीर खुसरो (1255–1324 ई०) माने जाते हैं, जो फारसी लेखक थे। यदि खुसरो की उन फुटकर हिन्दी रचनाओं का रूप प्राचीन काल का ही मान लिया जाय, जिसमें अत्यंत संदेह है, तो भी वे ब्रज मिश्रित बोली में मानी जाएँगी। ऐसा भी हो सकता है कि इस काल में कुछ अन्य साहित्यिक रचनाएं भी हुई हों, जो कालान्तर में खो गई हों कुछ भी हो अभी तक इस संबंध में न तो कोई रचनाएँ ही सामने आई हैं और न उनके विषय में कोई उल्लेख ही मिला है।"[6] यद्यपि अमीर खुसरो की रचनाएं लम्बी अवधि तक मौखिक परम्परा में रहीं जिसके कारण उपलब्ध साहित्य की भाषा की प्रामाणिकता संदेहास्पद है। लेकिन इससे खुसरो के ब्रजभाषा कवि होने के तथ्य में कोई फर्क नहीं पड़ता । अमीर खुसरो के गीत और दोहे ब्रजभाषा में रचित है–

''खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भए एकरंग
गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।''[7]

शिव प्रसाद सिंह की पुस्तक सूरपूर्व ब्रजभाषा के अनुसार खुसरो के समकालीन गोपाल नायक ने ब्रजभाषा में कुछ गीत लिखे थे। "गोपाल नायक के गीत जो रागकल्पद्रुम में मिलते हैं सभी ब्रजभाषा में हैं। रचना काव्य दृष्टि से उच्च कोटि की नहीं है किन्तु उसकी लयमयता और मधुरता अत्यंत परिष्कृत शब्द सौष्ठव का परिचायक है।"[8]

''उक्ति जुक्ति भक्ति युक्ति गुप्त होवै ध्यान लगावै
सब गोपाल नायक के अष्ट सिद्ध नव निद्ध जगत मध पावै''[9]

लगभग इसी समय महाराष्ट्र के संत नामदेव (1270–1350 ई) ने भी ब्रजभाषा में कुछ पदों की रचना की थी। अग्रवाल कवि ने भी 1354 ई. में प्रद्युम्नचरित नामक काव्य ग्रंथ की रचना ब्रजभाषा में किया था। निर्गुण काव्य धारा के प्रवर्तक कबीरदास (1398 ई – 1518 ई.) ने भी अपने अनेक गेय पदों (रमैनी और सबद) की रचना ब्रजभाषा में की है।

रैदास के पदों की भाषा भी ब्रजभाषा से प्रभावित है। कुछ विद्वानों के अनुसार रोड़ा कृत 'राउरवेल' में (1001–1025 ई०) पश्चिमी हिंदी काव्यभाषा के रूप में प्रयोग हुआ है।' पर यह सामग्री इतनी कम है कि इसके आधार पर कोई प्रामाणिक निष्कर्स नहीं निकाला जा सकता है। ब्रजभाषा में ओकार बाहुल्य तथा उकार बाहुल्य शब्दों और कियाओं के कारण गीतात्मकता स्वाभाविक रुप से में आ जाती है। विशिष्ट वर्ण विन्यास के अलावा ब्रजभाषा की मूल प्रवृत्ति में ही माधुर्य अधिक है। ब्रजभाषा के इसी गुण के कारण ही रीतिकाल के समस्त कवि इसकी ओर आकर्षित हुए। इसी माधुर्य ने अन्य प्रदेशों को काव्य–सृजन के लिए भी प्रोत्साहित किया।

वर्तमान के रूप का निर्धारण करने में अतीत निर्णायक भूमिका निभाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम ब्रजभाषा जीवनीपरक साहित्य के उद्भव और विकास की बात करेंगे। कहने की जरूरत नहीं है कि जीवन के प्रति किसी देश का दृष्टिकोण उसके जीवनी–साहित्य को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। वह न केवल उसकी प्रकृति–प्रवृत्ति का निर्धारण करता है वरन उसका नियमन भी । यही नहीं जीवनी साहित्य के विकास और अवरोध में भी उसकी भूमिका विवादातीत और सर्व प्रमुख रहती है।''[10] वैसे तो जीवनी विधा के बीज अपभ्रंश के कवियों द्वारा की गई आश्रयदाताओं की अतिश्योतिपूर्ण प्रशस्तियों में देखे जा सकते हैं किंतु वे जीवनी की शर्तों को पूरा नहीं करती, उनमें राजाओं के प्रायः अतिश्योक्तिपूर्ण शौर्य का काल्पनिक और विलासी प्रवृत्ति का ही अंकन अधिक है। इन वीर काव्यों में ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करने वाली वृतियाँ विरल है। आश्रयदाताओं के गुणों का उत्कर्ष दिखाने के लिए, वास्तविकता की अवहेलना प्रायः की गई है, वंश का गौरव दिखाने के लिए मूल पुरुषों की अप्रमाणिक तालिका गिनाई गई है। झूठे युद्धों की कल्पना की गई है। ऐतिहासिक तथ्यों को तोडा मरोडा भी गया है। अतिरंजना की विपुलता है, कहीं–कहीं अतिमानुष अप्राकृतिक वर्णन भी है। कई स्थलों पर दैवी तत्वों का प्रवेश और हस्तक्षेप भी दिखाया गया है।"[11]

**The Academia**
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
**Volume: 02, Issue: II, Pages: 21-24, Year: 2024**
**ISSN- 2583-8830**

कवित्त की दृष्टि से इन रचनाओं का महत्व अधिक है, जीवन चरित या जीवनी की दृष्टि से कम। जीवनी साहित्य की दृष्टि से इन रचनाओं का इतना ही मूल्य है कि इनका आधार ऐतिहासिक है। वंश परम्परा, युद्ध की घटनाओं, स्थलों आदि को काव्य का विषय बनाया गया है। इन ऐतिहासिक ग्रंथों की आलोचना करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि "भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें काव्य– निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना विलास का अधिक मान था, तथ्य निरुपण का कम, संभावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम। इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा।"[12]

जहां तक ब्रजभाषा में जीवनी लेखन का प्रश्न है तो वह आदिकालीन चरित काव्यों की तुलना में सशक्त है। उसमें ऐतिहासिकता का अभाव नहीं है। कहीं कहीं अतिरंजना की विपुलता होते हुये भी घटनाओं, तथ्यों का निरुपण भी ठीक ढंग से हुआ है। इन्हें केवल वीर–काव्य कहकर जीवनी मानने से इंकार नहीं किया जा सकता है। दरअसल मध्यकाल में एक राजा के गुणों का पैमाना उसकी युद्ध कुशलता और वीरता थी। यही कारण है कि चरित काव्य के रूप में जो रचनाएं हुयी है उसमें वीर–रस को ही प्रमुखता दी गयी है। अन्य विशेषताएं गौण हो गयी है। इन चरित काव्यों में सामाजिक जीवन, सामान्य जीवन, पारिवारिक जीवन, धार्मिक स्थिति, राजनीतिक जीवन का अभाव नहीं है। लेकिन विद्वानों ने इन विशेषताओं की सर्वथा उपेक्षा ही की है। वीर काव्य के रूप में ही इसका वर्णन करते रहे। जीवनी मानकर इन्हें देखने का प्रयास ही नहीं किया गया और न ही जीवनी के तत्वों को खोजा गया वरन यह कहकर कि ये रचनाएं जीवनी की शर्तों को पूरा नहीं करती है खारिज ही किया गया। दरअसल ये वे विद्वान हैं जो किसी विधा के शुरुआती दौर में ही उसकी सभी विशेषताओं को खोज लेना चाहते हैं। पश्चिम के विद्वानों द्वारा जो विशेषताएं तय की गयी है। उसी के आधार पर मूल्यांकन करना चाहते हैं। पश्चिम के लेखकों के सामने वह समस्याएं नहीं थी जो यहां के कवियों के सामने थी। उन्हें राजाश्रय में रहना पड़ता था इसलिए लेखन के लिए पूरी तरह स्वतंत्र नहीं थे। भारतीय सामाजिक ढांचा पश्चिमी सामाजिक ढाँचे से बिल्कुल अलग था। धर्म और राजाओ का प्रभाव पूरे साहित्य पर छाया हुआ था इसलिए प्रारम्भ में धार्मिक चरित काव्य लिखे गये और धीरे धीरे लौकिकता की और उन्मुख हुआ। कहना न होगा कि ब्रजभाषा में भी जीवनी लेखन की शुरुआत संतों के चरित लेखन से हुयी। ब्रजभाषा का जीवनीपरक साहित्य हमें गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलता है। जीवनी साहित्य का अध्ययन करते समय दोनों प्रकार की रचनाओं को लिया जाएगा। जिसमें नाभादास कृत 'भक्तमाल', बाबा बेनी माधवदास कृत 'गोसाई चरित' (16वीं शती), इसी काल खण्ड में गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' (गद्य में) आदि महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

उत्तर मध्यकाल में आचार्य केशवदास 'वीरसिंह देव चरित' (1607 ई.) नामक काव्य लिखा, जिसमें महाराज वीरसिंह देव का व्यक्तित्व वर्णित है। उनका दूसरा चरितकाव्य है– 'जहांगीर–जस–चन्द्रिका' (1612 ई.)। इसी क्रम में उस काल के उल्लेखनीय चरित काव्य हैं– 'छत्रप्रकाश' (गोरेलाल), 'सुजानचरित्र' (सूदन), 'हिम्मतबहादुर विरूदावली' (पद्माकर भट्ट), 'वंशभास्कर' (सूर्यमल्ल), 'हम्मीरहठ' (चन्द्रशेखर) आदि। ब्रजभाषा में अनेक जीवनी परक साहित्य की रचना हुयी। जिसमें सर्वाधिक प्रतिष्ठा नाभादास कृत 'भक्तमाल' को मिली। यह एक महाकाव्यात्मक जीवनी ग्रंथ है जिसमें लगभग 200 कवियों का जीवन परिचय और उनके गुणों का चित्रण है। ब्रजभाषा जीवनी का इसे प्रथम ग्रंथ माना जा सकता है। 'नाभादास ने जीवन चरित वर्णन के लिए प्राचीन कथा, लोक श्रुतियों और पुराने धर्म ग्रंथों का सहारा लिया है। भक्तमाल से पूर्व की भक्त चरित लिपिबद्ध करने की परम्परा रही होगी, जिसका नाभादास ने समुचित उपयोग किया है। समसामयिक भक्तों के वर्णन में उन्होंने अपरोक्ष ज्ञान और अनुभवों का आधार लिया है।' नाभादास द्वारा रचित इस काव्य ग्रन्थ का सही सही रचनाकाल ज्ञात नहीं है। इतना अवश्य है कि नाभादास 16वीं शताब्दी में हुये। "इनका प्रसिद्ध ग्रंथ भक्तमाल संवत् 1642 के पीछे बना और संवत् 1769 में प्रियादास ने उसकी टीका लिखी। इस मंत्र में 200 भक्तों के चमत्कार पूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिखे गए हैं।"[13]

जीवनी – साहित्य की परम्परा में भक्तमाल एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है। भक्तमाल में धर्म–साधना और साधको का इतिहास तो सुरक्षित है ही, अनेक कवियों के जीवन चरित भी अविकृत रूप में सुरक्षित है। भक्तमाल ने चरित–लेखन के क्षेत्र में अभिनव परम्परा का प्रवर्तन किया है। भक्तमाल को लेकर विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से विचार किया है। किसी ने इसे इतिहास माना है तो किसी ने समीक्षा ग्रंथ तो किसी ने जीवनी माना है। एच एस विल्सन और राधाकृष्ण ने इसे इतिहास माना है। वही चन्द्रवली पाण्डेय, सावित्री श्रीवास्तव ने इसे समीक्षा ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया हैं। भक्तमाल की प्रशंसा में चन्द्रबली पाण्डेय लिखते हैं "बिहारी के दोहों की तो बड़ी प्रशंसा की जाती है पर नाभादास के परिचय पर किसी का ध्यान नहीं जाता। यदि हमारी आँखे खुली होती और हम उनसे देखना भी जानते तो आज नाभादास की अवहेलना न होती और हमारा

**The Academia**
(A Multidisciplinary Peer-Reviewed Research Journal)
**Volume: 02, Issue: II, Pages: 21-24, Year: 2024**
**ISSN- 2583-8830**

आलोच्य साहित्य भी कल का न समझा जाता । बिहारी के दोहों के सामान नाभादास के छप्पयों की धूम होती और बहुत कुछ समीक्षा का मार्ग भी सुधर गया होता।"[14]

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक जीवनी परक साहित्य ब्रजभाषा मे लिखा गया है जिसे विद्वानों ने वीरकाव्य कहकर जीवनी के अंशों को खोजने का प्रयास नहीं किया है। ऐसे अनेक ग्रंथ हैं जिनमें जीवनी के सूत्र खोजे जा सकते हैं, उनमें प्रमुख हैं – सेनापति का गुरुशोभा, अणीयराय का जंगनामा, सोमनाथ का सुजान विलास, प्रतापसाहि का जयसिंह प्रकाश, ग्वाल कवि का हम्मीर हठ, गंगाराम का मान मंजरी, सुजान सिंह का सुजान विलास, रामकवि का जयसिंह चरित्र, सदानंद का रासा भगवंत सिंह, हरिदास का अजीत सिंह चरित्र आदि महत्वपूर्ण चरित्र काव्य हैं।

इस प्रकार ब्रजभाषा जीवनी परक साहित्य के उद्भव और विकास विवेचन करने के बाद हम कह सकते हैं कि कवियों ने अपने का आश्रयदाताओं के महत्व को स्थायी मूल्य प्रदान करने के उद्देश्य से चरित ग्रंथों का निर्माण किया। इस काल में कुछ ऐसे कवि थे जो आदिकालीन चारण धारा के समान कोरी प्रशंसात्मक कविता ही किया करते थे, पर कुछ ऐसे प्रतिभासम्पन्न कवि भी थे जो अपने आश्रयदाताओं के वास्तविक गुणों का ही बखान करते थे। इसके बावजूद इन चरित काव्यों में अगर जीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब उभरकर सामने नहीं आ पाया है तो इसका कारण कवि के अतिरिक्त समय, समाज, परिस्थिति और शासकों की मनोवृतियाँ भी बहुत दूर तक उत्तरदायी हैं।

**2. संदर्भ ग्रन्थ**

1. नामवर सिंह– हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1954, पृष्ठ 60
2. मोतीलाल मेनारिया– राजस्थान का पिंगला साहित्य, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड 1958,पृष्ठ 10
3. रामचंद्र शुक्ल– हिंदी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, 2005, पृष्ठ 109
4. धीरेन्द्र वर्मा– ब्रजभाषा, हिन्दुस्तानी अकादेमी इलाहाबाद, 1954, पृष्ठ 22
5. शिव प्रसाद सिंह–सूर पूर्व ब्रजभाषा, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1958,पृष्ठ–3
6. धीरेन्द्र वर्मा– ब्रजभाषा, हिन्दुस्तानी अकादेमी इलाहाबाद, 1954, पृष्ठ 19
7. रामचंद्र शुक्ल– हिंदी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, 2005, पृष्ठ 36
8. शिव प्रसाद सिंह–सूर पूर्व ब्रजभाषा, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1958,पृष्ठ–221
9. शिव प्रसाद सिंह–सूर पूर्व ब्रजभाषा, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1958,पृष्ठ–221
10. भगवत शरण भारद्वाज– हिंदी जीवनी साहित्य सिद्धांत और अध्ययन,परिमल प्रकाशन ,इलाहाबाद 1978 पृष्ठ 95
11. भगवत शरण भारद्वाज– हिंदी जीवनी साहित्य सिद्धांत और अध्ययन,परिमल प्रकाशन ,इलाहाबाद 1978 पृष्ठ 97
12. हजारी प्रसाद द्विवेदी –संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो , साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद,1985 पृष्ठ 10
13. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, 2005, पृष्ठ 97
14. सावित्री श्रीवास्तव –नाभादास कृत भक्तमाल तथा प्रियादास कृत टीका का पाठालोचन,अभिनव प्रकाशन 1981, पृष्ठ 18

**Corresponding Author:**
**राजीव यादव**
असिस्टेंट प्रोफेसर,
कालीचरण पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ